इकाई 1 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन क्यों ? विषय क्षेत्र एवं दृष्टिकोण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अर्थ
  1.2.1 अंतर्राष्ट्रीय संबंध एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति
1.3 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का बदलता स्वरूप
1.4 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन क्यों जरूरी है ?
1.5 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का विषय क्षेत्र
1.6 दृष्टिकोण
  1.6.1 पारंपरिक दृष्टिकोण: यथार्थवाद, आदर्शवाद एवं नव–यथार्थवाद
  1.6.2 वैज्ञानिक दृष्टिकोण
  1.6.3 व्यवस्था सिद्धांत
  1.6.4 खेल सिद्धांत
  1.6.5 समन्वयन सिद्धांत
  1.6.6 पर–निर्भरता दृष्टिकोण
  1.6.7 महिलावादी दृष्टिकोण
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अर्थ और उनके बदलते स्वरूप को समझ सकेंगे,
- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन की उपयोगिता जान सकेंगे,
- इसके विषय क्षेत्र को जान सकेंगे,
- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के पारंपरिक दृष्टिकोण की पहचान और उनकी व्याख्या कर सकेंगे, तथा
- प्रणाली सिद्धांत एवं खेल सिद्धांत जैसे प्रमुख वैज्ञानिक दृष्टिकोणों को स्पष्ट कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

सदियों से राष्ट्रों के बीच के संबंध का अध्ययन विद्वानों को लुभाता रहा है। फिर भी "अंतर्राष्ट्रीय शब्द" का पहला प्रयोग 18वीं सदी में जेरेमी बेंथम द्वारा किया गया। हालांकि इस शब्द का लैटिन समतुल्य **इंटरजेन्टेस** एक शताब्दी पूर्व रिजशार जूश द्वारा प्रचलन में लाया गया था। इन दोनों ने ही इसका प्रथम प्रयोग विधि की उस शाखा के लिए किया था जिसे "राष्ट्रों की विधि" (Law of nations) कहा जाता है। यही बाद में अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूप में स्थापित हुआ। 19वीं एवं 20वीं सदी में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का काफी तेजी से विकास हुआ है। आज राष्ट्र–राज्य एक दूसरे पर काफी निर्भर हो चुके हैं और इसीलिए उनके बीच के संबंध–राजनीतिक या फिर व्यापार और व्यवसाय से संबद्ध–अध्ययन और ज्ञान का अनिवार्य क्षेत्र बन गये है। इस इकाई में हमारा मुख्य

सरोकार संप्रभुतासंपन्न समाजों, जिन्हें राष्ट्र या राष्ट्र–राज्य कहा जा सकता है, के बीच राजनीतिक संबंधों से है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, संप्रभुतासंपन्न राज्यों के बीच परस्पर निर्भरता काफी बढ़ी है। इस बीच दुनिया भी काफी बदली है। आज के जेट के समय में आवागमन इतनी तेजी से हो गया है कि दूरियां काफी हद तक सिमट गई हैं। क्षेत्र उपग्रहों के इस्तेमाल से दुनिया के देश एक दूसरे के इतने करीब आ गए हैं कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का महत्व अभूतपूर्व ढंग से बढ़ गया है। यह न केवल हमारे आधुनिक जीवन की एक शर्त है, बल्कि एक विद्या के रूप में भी इसका अध्ययन जरूरी है।

1.2 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अर्थ

अंतर्राष्ट्रीय संबंध शब्द का प्रयोग हम "स्थिति" एवं "विषय" दोनों ही रूपों में कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, क्विन्सी राइट उपर्युक्त भेद के पक्षधर हैं। हालांकि संप्रभुतासंपन्न देशों के बीच अधिकारिकीय संबंधों के अध्ययन को अंतर्राष्ट्रीय संबंध का नाम दिया जाता है, किन्तु उसके क्विन्सी के . . . ." इस संदर्भ में अंतर्राज्यीय शब्द ज्यादा उपयुक्त होता क्योंकि राजनीति विज्ञान में राज्य शब्द का प्रयोग ऐसे ही समाजों के लिए किया जाता है।" इस तरह विचार करने पर अंतर्राष्ट्रीय संबंध एक "स्थिति" के रूप में अंतर्राष्ट्रीय जीवन के तथ्यों का द्योतक है यानि राजनय एवं विदेश नीति के आधार पर राष्ट्रों के बीच संबंधों का वास्तविक व्यवहार। इसमें सहयोग, संघर्ष और युद्ध जैसे विषय क्षेत्र शामिल हैं। राइट के अनुसार, "अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन में विषय के बारे में सत्यवादी होना जरूरी है, यानी राज्यों के बीच संबंधों का चालन कैसे हो और एक विद्या के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संबंध को राज्यों के मध्य संबंधों को एक सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करना चाहिये।

दूसरे शब्दों में अंतर्राष्ट्रीय संबंध को संप्रभु राज्यों के बीच उन तमाम संबंधों–राजनीतिक, राजनयिक, व्यापारिक एवं अकादमिक–का अध्ययन करना चाहिए क्योंकि वे सभी अंतर्राष्ट्रीय संबंध की विषय वस्तु हैं। अंतर्राष्ट्रीय संबंध की परिधि में "तरह–तरह के वे समूह जैसे राष्ट्र, राज्य, सरकारें, जातियाँ, क्षेत्र, गठबंधन, परिसंघ, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, औद्योगिक संगठन भी, सांस्कृतिक संगठन, धार्मिक संगठन आदि भी शामिल हैं।" यानि कि वे सब जो किसी न किसी तरह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रक्रिया में लिप्त हैं।

जहाँ क्विन्सी राइट अंतर्राष्ट्रीय संबंध की दो परिभाषाओं–एक स्थिति के रूप में, और दूसरी विषय के रूप में – भेद करते हैं, वहीं दूसरी तरफ *पाल्मर* एवं *पार्किन्स* जैसे विद्वान अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को विद्या के रूप में मान्यता देने में आशंका प्रकट करते हैं। इन दोनों का मानना है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध इतिहास और राजनीति विज्ञान की विधाओं से जन्मा है। करीब चालीस साल पहले, पाल्मर एवं पार्किन्स ने कहा था, "यद्यपि अब अंतर्राष्ट्रीय संबंध उस स्थिति से बाहर आ गया है जब इसे इतिहास एवं राजनीति विज्ञान की खिचड़ी कहा जाता है, किन्तु आज भी यह पूर्णसंगठित विषय की हैसियत से कोसों दूर है।"

अंतर्राष्ट्रीय संबंध के प्रथम अध्येताओं में से एक प्रो. अल्फ्रेड जिमरमैन ने द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले लिखा था कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध स्पष्ट ही सामान्य अर्थ में एक विषय नहीं है। इसके पास पठन सामग्री का एक भी सूत्रबद्ध संकलन नहीं है। यह कोई एक विषय नहीं है बल्कि विषयों का गठ्ठर मात्र है–विधि, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, भूगोल आदि–आदि।" पाल्मर और पार्किन्स के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय संबंध अपने चरित्र और विषय क्षेत्र में बहुत अधिक व्यक्तिपरक है। शुरूआती दौर में ई. एच. कार जैसे विद्वानों ने इसे "स्पष्ट और निश्चित रूप से अति आदर्शवादी" कहा था। किन्तु, राष्ट्रकुल एवं उसकी सामुहिक सुरक्षा व्यवस्था की विफलता को देखकर उन्हें कहना पड़ा कि अब "अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में विश्लेषणात्मक विचार करना संभव हो गया है"। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अनेक विद्वानों ने ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं। आज यह संभव नहीं है कि हम अंतर्राष्ट्रीय संबंध को यूटोपियन कह कर खारिज कर दें या फिर उसे ज्ञान की एक स्वतंत्र शाखा न मानें। राष्ट्रीय हित से प्रत्येक राष्ट्र का विशेष सरोकार होता है। विदेश नीति के नियोजनकर्ता एवं निर्माता अपने देश के राष्ट्रीय हित के बारे में सही समझ की उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि उसकी रक्षा तो हालत में जरूरी है। हार्टमैन अंतर्राष्ट्रीय संबंध को अध्ययन को ऐसे विषय के रूप में परिभाषित करते हैं जो उन प्रक्रियाओं जिनसे राज्य अपने राष्ट्रीय हितों का समंजस्य दूसरे राज्यों के साथ

करते हैं, पर ध्यान देता है"। चूंकि विभिन्न राज्यों के राष्ट्रीय हित अक्सर एक दूसरे के साथ संघर्ष की स्थिति में रहते हैं अतः मौर्गेन्थु का निष्कर्ष है कि अन्य राजनीति की तरह अंतर्राष्ट्रीय राजनीति भी सत्ता का संघर्ष है। सत्ता राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा देने का साधन है।

1.2.1 अंतर्राष्ट्रीय संबंध एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति

1919 में वेल्स विश्वविद्यालय (यू. के.) में अंतर्राष्ट्रीय संबंध की पहली पीठ की स्थापना हुई थी। इस पीठ के पहले दो पदासीन ख्याति प्राप्त इतिहासकार अल्फ्रेड जिमरमैन एवं सी. के. वेबस्टर थे। तब अंतर्राष्ट्रीय संबंध एक विषय के रूप में ऐतिहासिक राजनय से ज्यादा कुछ नहीं था। अगले सात दशकों में इस विषय की प्रकृति एवं अन्तर्वस्तु में परिवर्तन आया है। आज वर्णनात्मक राजनयिक इतिहास की जगह राजनीति का विश्लेषणात्मक अध्ययन मान्यता पा चुका है। अब अंतर्राष्ट्रीय राजनीति शब्द का प्रयोग उस नए विषय के लिए किया जाता है जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के दिनों में विकसित होता रहा है। अंतर्राष्ट्रीय संबंध की तुलना में आज यह अधिक वैज्ञानिक है, किन्तु उसकी तुलना में अधिक संकुचित भी।

आज भी इन दोनों पदों का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में किया जाता है। किन्तु दोनों के अध्ययन के विषय क्षेत्र एवं अंतर्वस्तु अलग–अलग हैं। हैन्स मौर्गेन्थु का मानना है कि "अंतर्राष्ट्रीय राजनीति अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की आत्मा है, फिर भी दोनों के बीच स्पष्ट विभेद किया जाना चाहिए। उनके मतानुसार अंतर्राष्ट्रीय संबंध अंतर्राष्ट्रीय राजनीति से अधिक व्यापक है। मौर्गेन्थु के अनुसार राज्यों के बीच राजनीति जहाँ सत्ता मात्र का संघर्ष है, वहीं अंतर्राष्ट्रीय संबंध राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक संबंधों का भी अध्ययन करता है। हैरोल्ड एवं मार्गरिड स्प्राउट का विचार है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध किसी देश के उन तमाम मानवीय व्यवहारों का अध्ययन करता है जो सीमापार देश के मानवीय व्यवहारों को प्रभावित करता है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति दूसरी तरफ केवल राज्यों के बीच विद्यमान संघर्षों व सहयोगों का अध्ययन करती है, वह भी राजनीतिक स्तर पर ही। पैडेलफोर्ड व लिंकन के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति बदलते सत्ता समीकरणों के संदर्भ में राज्य की नीतियों की अंतर्क्रियाओं का अध्ययन करती है। पाल्मर एवं पार्किन्स का भी कुछ ऐसा ही ख्याल है। वे कहते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति मूल रूप से राज्य व्यवस्थाओं का अध्ययन करती है।

चूंकि अंतर्राष्ट्रीय संबंध संप्रभु राज्यों के बीच मौजूद तमाम संबंधों का अध्ययन करते हैं, अतः यह व्यापक हैं, जबकि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति सीमित है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विद्यार्थी की हैसियत से हमें राज्यों के बीच होने वाले संघर्ष एवं सहयोग का अध्ययन तो करना ही होगा। किंतु इसके साथ– साथ हम राज्यों के संबंधों के दूसरे पहलुओं, यानि उनके बीच आर्थिक अंतः क्रियाओं एवं गैर–राज्यीय तत्वों की भूमिका का भी अध्ययन करेंगे।

1.3 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का बदलता स्वरूप

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के स्वरूप एवं संदर्भ में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। पारंपरिक रूप से, विश्व राजनीति के केन्द्र में यूरोप था और देशों के बीच संबंधों का संचालन विदेश विभाग के अधिकारियों द्वारा गुपचुप तरीके से किया जाता था। आज न केवल इतना ही हुआ है कि परमाणु हथियारों की वजह से युद्ध का स्वरूप बदल जाता है और पुराने सत्ता संतुलन की जगह खौफ का संतुलन स्थापित हो गया है, बल्कि राजनय का भी स्वरूप बदल गया है। आज हम जेट युग में रह रहे हैं। अब राज्य एवं सरकार के मुखिया तथा विदेश मंत्री पूरी दुनिया की यात्रा करते हुए अपना निजी संपर्क कायम करते हैं तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंध के कार्य–व्यापार का संचालन करते है। प्रथम विश्वयुद्ध से पहले इंग्लैंड से भारत आने वाले यात्री को 20 दिनों की समुद्री यात्रा करनी पड़ती थी। आज दिल्ली से लंदन की दूरी तय करने में एक जेट विमान को 9 घंटे से भी कम समय लगता है। टेलीफोन, फैक्स मशीनों, टेलीप्रिंटर तथा अन्य इलेक्ट्रोनिक उपकरणों की बदौलत सरकारों के मुखिया एक दूसरे के निजी संपर्क में आ गए हैं। हॉटलाइन–संचार, वाशिंगटन एवं मास्कों के बीच दुनिया के शीर्ष नेतृत्व को एक दूसरे के संपर्क में रखता है। नतीजतन वर्तमान में राजदूतों की स्वतंत्रता कम हुई है क्योंकि अब उन्हें रोज ब रोज अपनी सरकारों से निर्देश प्राप्त होते रहते हैं।

औपनिवेशीकरण के खात्मे की वजह से अनेक स्वतंत्र और संप्रभु राज्यों का उदय हुआ है। यूरोपीय

सत्ता के अधीन जो पुराने उपनिवेश थे जिनमें भारत भी शामिल है, आज अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे हैं। आज वे विश्व राजनीति में अपनी दखल रखते हैं। सोवियत संघ के बिखराव से संयुक्त राष्ट्र की संख्या में 3 के बजाय 15 की बढ़ोतरी हुई है। अत्यंत छोटे देशों के पास ताकत भले ही न हो किन्तु उन्हें भी आज आम सभा में अपनी बात रखने का बराबर अधिकार है। 1990-93 के दौरान चार अत्यंत छोटे देशों–लीशटैनंस्टीन, सान मैरिनों, मोनैको और एण्डोरा–को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता प्रदान की गई है। संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों की संख्या जहां 1945 में 51 थीं, वहीं आज 1995 में ये बढ़कर 185 हो गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का संचालन अनेक नए राष्ट्र–राज्यों द्वारा होता है। इसके अलावा ढेर से गैर राज्यीय ताकतें जैसे बहुराष्ट्रीय निगम तथा बहुद्देशीय निकाय, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में बढ़–चढ़कर हिस्सा ले रही हैं। महाशक्ति के रूप में सोवियत संघ के पतन होने से संयुक्त राज्य अमेरिका का एक एकल महाशक्ति के रूप में उभर कर सामने आया है और अब वह बिना किसी चुनौती के विश्व राजनीति पर अपना दबदबा कायम कर सकता है। हालांकि गुट निरपेक्ष आंदोलन अब भी कायम है, किंतु युगोस्लाविया जैसे संस्थापक देश के पतन तथा प्रतिस्पर्द्धी गुटों के खत्म हो जाने से, गुट निरपेक्ष आंदोलन के साथ–साथ तीसरी दुनिया की भूमिका भी बदल गई है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर का मिलान किजिए।

1) अंतर्राष्ट्रीय संबंध एक विषय भी है और एक स्थिति भी। भेद स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

2) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में क्या अंतर है ?

.....

.....

.....

.....

4) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के बदलते स्वरूप के बारे में संक्षेप में वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.4 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन क्यों जरूरी है ?

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अन्य कई विषयों से निकट का जुड़ाव है। इन विषयों में इतिहास, राजनीति विज्ञान, विधि, अर्थशास्त्र और भूगोल शामिल हैं। ऐसे में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अलग से अध्ययन किस तरह उपयोगी है ? आप जानते हैं कि दुनिया में कोई राष्ट्र अलग–थलग नहीं रह सकता। उस जमाने में भी जब यातायात के साधन बहुत पुराने अथवा आज की तुलना में बहुत कम विकसित थे, संप्रभु राज्य एक दूसरे के संपर्क में रहते थे। वे कभी–कभी सहयोग भी करते थे किन्तु अधिकांशतः उनके बीच संघर्ष की ही स्थिति अधिक बनी रहती थी। नतीजतन उनके बीच युद्ध होता रहता था। उनके संबंधों के बारे में आम तौर पर इतिहासकार और राजनीतिविज्ञान के अध्येता ही अध्ययन करते थे। राजनयिक इतिहास मुख्य रूप से संप्रभु राज्यों के संबंधों का अध्ययन करता था।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में यातायात व संचार के क्षेत्र में हुई क्रांतियों ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का न केवल स्वरूप बदल दिया है, बल्कि आज इसका अध्ययन प्रत्येक जागरूक व्यक्ति के लिए अनिवार्य हो गया है।

आज हम एक परस्पर निर्भर राज्य व्यवस्था के युग में जी रहे हैं। हम सबके लिए यह जानना जरूरी हो गया है कि दुनिया में क्या–क्या हो रहा है। राजनीतिक घटनाएँ तो महत्वपूर्ण हैं ही, किंतु साथ ही आर्थिक विकास, व्यापार, व्यवसाय तथा बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आज हम बढ़ते अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के युग में पदार्पण कर चुके हैं इसीलिए आज राष्ट्रों व उनके लोगों को न केवल संयुक्त राष्ट्र एवं उसके अनगिनत अभिकरण प्रभावित करते हैं अपितु यूरोपीय संघ, दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (दक्षेस), दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संघ (असियन) तथा अफ्रीकी एकता संघ (ओ ए यू) जैसे क्षेत्रीय संगठन भी हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद पूरी मानवता के लिए अहम सवाल बनकर खड़ा हो गया है। विश्वबैंक और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन भी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को प्रभावित करने लगे हैं। यही करण है अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन छात्रों एवं अन्य लोगों की सजगता के लिए बहुत आवश्यक हो गया है।

1.5 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का विषय क्षेत्र

विधि व राजनयिक इतिहास के अध्ययन के साथ शुरू हुए अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का विषय क्षेत्र अब काफी विस्तृत हो चुका है। राष्ट्रों के बीच पारस्परिक संपर्क जटिल हुए हैं। नतीजन विद्वानों का ध्यान अंतर्राष्ट्रीय संगठनों एवं संस्थाओं से क्षेत्र विशेष तथा विदेश नीति के रणनीतिक पहलुओं के अध्ययन की ओर गया है। इससे राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष और उपनिवेश विरोधी आंदोलन की गत्यात्मकता की बेहतर समझ पैदा करने की कोशिशों में तेजी आई है। युद्ध के दौरान संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हो जाने से राष्ट्रों के बीच संबंधों के पुनर्निर्माण की दिशा में सोच बेहतर हुई है। हालांकि संघर्ष आज भी अंतर्राष्ट्रीय संबंध का केन्द्रीय विषय है, तथापि सहयोगपरक मामलों का अध्ययन महत्वपूर्ण हो उठा है। युद्ध का तात्कालिक प्रभाव इसी रचनात्मक दृष्टिकोण के रूप में सामने आया। यह इनि क्लैभद् की पुस्तक तलवार एवं हल (स्वोर्ड एंड प्लाउशेयर्स) जैसे शीर्षक वाली किताबों के शीर्षकों से भी जाहिर होता है। शीतयुद्ध के दौरान विचारधारा एवं निशस्त्रीकरण जैसे विचारों को अभूतपूर्व महत्ता हासिल हुई। इसी तरह गठबंधन और क्षेत्रीयतावाद भी अंतर्राष्ट्रीय संबंध के महत्वपूर्ण अंग बन गए हैं।

समसामयिक अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के तहत राजनयिक इतिहास, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, अंतर्राष्ट्रीय विधि एवं क्षेत्रवार अध्ययन के तमाम आयामों का अध्ययन शामिल है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की अंतर्वस्तु के बारे में लिखते हुए कुछ दशक पहले पाल्मर और पार्किन्स ने कहा था कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध "संक्रमण कालीन विश्व समुदाय का अध्ययन है। यह निष्कर्ष आंज भी बहुत हद तक सच है। संक्रमण काल अभी भी उत्कर्ष बिंदु तक नहीं पहुँचा है। हालांकि अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अंतर्निहित कारक नहीं बदले हैं, फिर भी विश्व परिदृश्य बदल गया है और वह आज भी बदल रहा है। राज्य व्यवस्था संशोधनों के दौर से गुजर रही है, बडे पैमाने पर प्रौद्योगिकी का विकास हुआ है तथा अफ्रीकी और एशिया के नए देशों की भूमिका लगातार बढ़ती जा रही है। भारत आज [illegible] निर्णय लेने की स्थिति में है। जैसा कि उसने 1996 में व्यापक परीक्षण प्रतिबंध (सी टी बी टी) पर

हस्ताक्षर करने के मामले में दिखाया भी गया। साथ ही आज सर्वत्र बढ़ती आकांक्षाओं की भी क्रांति हो रही है। इसलिए पाल्मर और पार्किन्स ने लिखा था सम–सामयिक अंतर्राष्ट्रीय संबंध में नए और पुराने तत्वों का आपस में गूंथा होना अनिवार्य है। यों तो आज भी राष्ट्र राज्य व्यवस्था व अंतरराज्यीय संबंध ही इसके केन्द्र बिंदु हैं, किन्तु अनेक संगठनों व समूहों के क्रियाक्लापों व अंतक्रियाओं का ध्यान रखना भी जरूरी हो गया है।

वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय संबंध का विषय क्षेत्र बीसवीं सदी के अंत में बहुत व्यापक हो गया है। राज्यों के बीच पारस्परिक निर्भरता में इतनी बढ़ोतरी हुई है कि पूरी दुनिया वास्तव में एक विश्व ग्राम (globle village) में बदल गई है। राज्यों के आर्थिक संबंध, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, जैसे विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की भूमिका आज पूरी दुनिया की आर्थिक गतिविधि को प्रभावित करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ एवं उसके अन्य अभिकरण अनेक सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक गतिविधियों में लिप्त हैं। मानवीय अस्तित्व के लिए अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद का खतरा विश्व की सामान्य चिंता का विषय है। बहुराष्ट्रीय निगम जो, वास्तव में दुनिया भर में कारोबार करने वाली बड़ी कंपनियां हैं, अंतर्राष्ट्रीय संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले गैर राज्यीय तत्व के रूप में उभरे हैं। कहने का मतलब यह है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध की परिधि काफी व्यापक हो गई है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के अलावा, इसमें अन्य दूसरी अन्तर्राज्यीय गतिविधियाँ भी शामिल हैं।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए

1) संक्षेप में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन की उपयोगिता का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) समसामयिक अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का विषय क्षेत्र क्या है ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.6 दृष्टिकोण

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के कई दृष्टिकोण हैं। पारंपरिक एवं शास्त्रीय दृष्टिकोण इतिहास को एक ऐसा प्रयोगशाला मानता हैं जिससे सार्थक प्रतिपादित किए जा सकते हैं। पारंपरिक दृष्टिकोण के तहत दो प्रमुख धारायें यथार्थवाद और आदर्शवाद हैं। यथार्थवादी प्रणाली जहाँ सत्ता संघर्ष को तमाम अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का केन्द्रीय बिंदु मानता है, वहीं आदर्शवादी प्रणाली व्यक्ति की अंतर्निहित अच्छाई में विश्वास करती है। मॉर्गेन्थु जैसे यथार्थवादी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में साधन और चरित्र को

विशेष तरजीह नहीं देते। इनके अनुसार राष्ट्रीय हित ही अंतर्राष्ट्रीय संबंध का लक्ष्य है जिसे सत्ता के जरिए प्राप्त करना अनिवार्य है। दूसरी तरफ आदर्शवादी हैं जो मानते हैं कि विश्वशांति का आदर्श विवेक, शिक्षा एवं विज्ञान की सहायता से प्राप्त किया जा सकता है। हाल के वर्षों में नवयथार्थवाद अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन की नई प्रणाली के रूप में विकसित हुई है।

1.6.1 पारम्परिक दृष्टिकोणः यथार्थवाद, आदर्शवाद, एवं नव-यथार्थवाद

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के पारम्परिक दृष्टिकोण की दो प्रमुख प्रणालियाँ हैं—यथार्थवाद और आदर्शवाद। जॉर्ज कौन और हान्स मॉगेन्थु का विचार है कि सत्ता संघर्ष ही तमाम अंतर्राष्ट्रीय सबंधों का केन्द्रीय तत्व है। सामान्यतः व्यक्तियों में यह भय बना रहता है कि दूसरे सदैव उन पर आक्रमण करने और उन्हें बर्बाद करने की ताक में बैठे हुए हैं और इसीलिए, अपनी रक्षा के लिए दूसरों को मारने के लिए लगातार तैयार रहना चाहिए। यही बुनियादी मानवीय वृति राज्यों के संबंधों को भी संचालित करती है। यानि, यथार्थवादी मानते हैं कि राष्ट्रों के बीच वैमनस्य और द्वंद्व, इस या उस रूप में सदैव मौजूद रहे हैं। जिस प्रकार निजी हित वैयक्तिक आचरण को संचालित करता है, ठीक उसी प्रकार राष्ट्रीय हित राष्ट्र राज्यों की विदेश नीति को संचालित करता है। निरंतर द्वंद्व अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की वास्तविकता है और यर्थाथवादियों के अनुसार यह द्वंद्व सीधा सत्ता संघर्ष का परिणाम है। यर्थाथवादी साधनों को कोई खास महत्व नहीं देते हैं। उनके लिए राष्ट्रीय हित ही एकमात्र लक्ष्य है और इसे हर कीमत पर बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

हॉन्स जे मॉर्गेन्थु की प्रभावकारी पुस्तक "पॉलिटिक्स अमंग नेशन्स" यथार्थवाद को बहुत दूर तक ले गई। यथार्थवादियों के लिए राष्ट्रों के बीच सत्ता वितरण की व्याख्या करना ही अंतर्राष्ट्रीय संबंध का एकमात्र काम है, दूसरा कुछ भी नहीं। अगर सत्ता वितरण को समझ लिया जाये, तो यथार्थवादियों का मानना है कि तब व्यवस्था की विशेषताओं और अलग–अलग राष्ट्रों के आचरण की व्याख्या करना संभव हो सकेगा। इसके विपरीत आदर्शवादियों का दृढ़ मत है कि मानव मन की मौलिक अच्छाई अंततः विजयी होगी और एक ऐसी विश्व व्यवस्था प्रकट होगी जिसमें न युद्ध होगा न असमानता न अत्याचार। यह नई विश्व व्यवस्था विवेक, शिक्षा और विज्ञान के इस्तेमाल से संभव होगी। आदर्शवादी भावी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं जिस में न राजनीति है, और न हिंसा न ही अनैतिकता। आदर्शवाद की मान्यता है कि आखिरकार एक ऐसा अंतर्राष्ट्रीय संगठन पैदा होगा जिसे सभी राष्ट्र–राज्यों का आदर प्राप्त होगा। वही संगठन दुनिया को द्वंद्व और युद्ध से मुक्ति देगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्ता की समस्या ही वह निर्णायक बिंदु है जहाँ यर्थाथवादी और आदर्शवादी एक दूसरे से जुदा होते हैं। सेंट साइमन, आल्डस हक्सले, महात्मा गांधी तथा डड्रो विल्सन मुख्य आदर्शवादी विचारक हैं। नैतिकता उनके लिए अहम मुद्दा है, क्योंकि वे अंतर्राष्ट्रीय शांति और सहयोग की वकालत करते हैं।

यथार्थवाद एवं आदर्शवाद का विश्लेषण किया जाये तो पता चलेगा कि दोनों का अलग–अलग औचित्य है। बशर्ते दोनों अपनी जिद्द से बाज आएं। इन दोनों के बीच के रास्ते को चर्च–व्यवस्था (eclectreism) के नाम से जाना जाता है। एक तरह से यह दृष्टिकोण यथार्थवाद की निराशा एवं आदर्शवाद की आशा का मध्यम रूप है। चर्च–व्यवस्था यर्थाथवाद एवं आदर्शवाद दोनों की अच्छाइयों का इस्तेमाल करना चाहती है। क्विन्सी राइट यथार्थवाद को लघुसूत्री राष्ट्रीय नीति का परिचायक और आदर्शवाद को दीर्घसूत्री अंतर्राष्ट्रीयतावाद का द्योतक मानते हैं। यथार्थवादियों को तामसपुत्र (Children of darkness) तो आदर्शवादियों को प्रकाशपुत्र (children of light) की संज्ञा से नवाजा गया है। नाईबहर तामसपुत्रों का बुराई के रूप में उल्लेख करता है तो प्रकाशपुत्रों का गुणों के रूप में। किंतु एक दूसरे मानदंड के आधार पर वह कहता है, यथार्थवादी चतुर है क्योंकि वे आत्मबल की ताकत से वाकिफ हैं, जबकि आदर्शवादी मूर्ख हैं क्योंकि वे अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में अराजकता के खतरे से अनजान हैं। दोनों को इसमें सीखने के लिए बहुत कुछ है।

नवयथार्थवाद अथवा संरचनात्मक यथार्थवाद अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन की वर्तमान प्रणालियों में से एक है। वाल्ज, ग्रीको, क्विहेन तथा जोसेफ नाई इस प्रणाली के महत्वपूर्ण प्रणेताओं में से हैं। नव यथार्थवादी मानते हैं कि जिसकी लाठी उसकी भैंस का सिद्धांत मौलिक रूप से हौब्सवादी है। बड़ी ताकतें हमेशा वैमनस्य की भावना से ग्रस्त रहती है। संरचना के स्तर पर आम तौर पर अराजकता बनी रही है, यद्यपि इसके मुख्य अदाकार बदलते रहते हैं। संरचना से अर्थ है एक व्यवस्था के अंतर्गत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ किस प्रकार सामंजस्य बनाए हुए हैं। मौजूदा व्यवस्था जो कि अराजक (राज्य सत्ता को चुनौतियाँ आम हैं) में हम अक्सर पाते हैं कि एक शक्तिशाली राष्ट्र की सबसे ज्यादा रूचि दूसरे राष्ट्रों को आपेक्षिक सामर्थ्य प्राप्त करने से रोकने में

होती है। क्विहेन और नाई आगे कहते हैं कि गैर राज्यीय तत्वों की भूमिका में इजाफा होने से यह और भी जटिल हो गई है। संक्षेप में, नवयथार्थवादी मानते हैं कि राष्ट्र राज्य आज भी राजनीति के मुख्य कलाकार हैं, कि राज्य के आचरण की विवेक सम्मत व्याख्या हो और राज्य अपने हितों का आकलन करता है। इस हद तक वे यथार्थवादियों के साथ हैं। किन्तु साथ ही नवयथार्थवादी यह भी कहते हैं कि आज अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की पहचान जटिलता व बहुकेन्द्रक गतिविधियों के रूप में की जा सकती है और इन गतिविधियों का स्रोत अब न राज्य ही नहीं बल्कि गैर–राज्य तत्व हैं। अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, धार्मिक युद्ध, गृहयुद्ध की बढ़ती घटनाओं और प्रतियोगी बहुराष्ट्रीय निगमों की वजह से यह जटिलता और भी जटिलतर हो गई है।

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद के वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य एक नए रूप में प्रकट हुआ है। विखंडनकारी एवं अलगाववादी आंदोलनों की वजह से राष्ट्र–राज्यों का अस्तित्व खतरे में पड़ चुका है। जॉन स्ट्रेमलाऊ के अनुसार, "उन राजनयिकों जो कि अफ्रीका, बल्कन, पूर्व सोवियत संघ में अराजकता खत्म करने में लगे हैं, उनके लिए "रोकथाम" आज एक आम चर्चा का शब्द बन चुका है।" उदाहरण के लिए सन् 1992 में दुनिया भर में 30 स्थानों पर संघर्ष चल रहा था। इनमें से 29 के निपटारे के लिए सैन्य कार्रवाई की गई और ये सभी कार्रवाइयाँ अतः देशीय थी। इन उदाहरणों के हवाले यह दिखाया जा सकता है कि आज जितनी सैन्य कार्रवाइयां देशों के अंदर हो रही हैं उतनी देशों के बाहर या बीच नहीं हो रही। पूर्व युगोस्लाविया का जातीय संघर्ष (सर्बों व क्रोएशियाइयों तथा सर्बों व बोस्नियाइयों के बीच) अफगानिस्तान का आंतरिक उपद्रव, कुर्दो को लेकर ईराक में छिड़ा संघर्ष, सोमालिया की हताश स्थिति, मोहाजिर कौमी आंदोलन से संबद्ध संघर्ष, भारत के उत्तरी राज्यों–जम्मु एवं काश्मीर तथा पंजाब में आतंकवादी गतिविधियाँ–ये राष्ट्र राज्य के अंदर होने वाली सैन्य कार्रवाइयों के कुछ उदाहरण हैं। शीतयुद्ध के उपरांत होने वाले संघर्षों में 90 प्रतिशत हत्यायें नागरिकों की हुई हैं, न कि सैनिकों की। इस प्रकार नव यथार्थवाद इस अराजक विश्व में सत्ता–संघर्ष के तत्व पर विशेष बल देता है। सत्ता संघर्ष केवल राज्यों के बीच ही नहीं है अपितु उनमें से प्रत्येक के अंदर भी है।

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि कम से कम सामाजिक राजनीतिक स्तर पर यथार्थवादी नहीं चाहते कि विदेश नीति का निर्धारण घरेलू स्थितियों के अनुरूप हो। वे चाहते हैं कि राज्य की भूमिका सत्ता के राजनयिक, सैनिक व रणनीतिक स्त्रोतों तक ही सीमित रहे। शीतयुद्धोत्तर काल के नवयथार्थवादियों का मत है कि शीतयुद्ध (1945-89) के दौरान विश्व शांति संभव हो सकी तो इसलिए कि दुनिया तब दो स्थिर ध्रुवों में विभाजित थी, आतंक का संतुलन था तथा यह विश्वास की, कि परमाणु युद्ध अंततः आत्महत्या साबित होगा। शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद यथार्थवादियों की सोच है कि दुनिया में शांति अब राज्यों के आपसी आचरण से ही कायम होगी और यह आचरण अमरीका अपने बाहुबल के जोर से सुनिश्चित करेगा। अमेरिका ऐसा करने में समर्थ है क्योंकि दुनिया की सत्ता पर उसका वास्तविक एकाधिकार है। यथार्थवाद संयुक्त राष्ट्र, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संघटन की भूमिका को स्वीकारता है, पर मानता है कि इन पर विश्व की प्रमुख शक्तियों का दबदबा है। यथार्थवादी मानते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, व्यवस्थाओं व गैर राज्यीय तत्वों की मौजूदगी के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में शक्ति का ही वर्चस्व बरकरार है।

यहाँ छात्रों के लिय यह जानना दिलचस्प होगा कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन की यथार्थवादी व यथार्थवादी प्रणालियाँ अमेरिका व यूरोप तक ही समीति हैं। दोनों राज्य सत्ता व्यवस्था एवं तरराज्यीय संबंधों पर जोर देते हैं। दोनों के बीच मौलिक अंतर यात्रा और फोकस को लेकर है।

अंतर्राष्ट्रीय संबंध के संदर्भ में नवयथार्थवाद (जो अमेरिका व युरोप में ज्यादा मान्य है) यथार्थवाद से दो रूपों में भिन्न हैं। पहला, यह राजनयिक, सैनिक और रणनीतिक स्त्रोत, जो सत्ता संतुलन को कायम रखते हैं या तोड़ देते हैं, को कम महत्व देता है यह स्वपोषित अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के निर्माण में राजनीतिक व आर्थिक सरोकारों को प्राथमिकता प्रदान करता है। यही कारण है कि अधिकांश नवयथार्थवादी अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक अर्थशास्त्र के विद्वान रहे हैं।

विकासशील देशों में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन का मामला अजीब है। इनके लिए पराश्रिता और विकास अध्ययन के मुख्य सरोकार हैं न कि पश्चिम की राज्यकेन्द्रित दृष्टि। यह दृष्टि प्रभुत्वकारी संतुलन अथवा स्थिरता के सिद्धांत में यकीन करती है (यानि, सत्ता का असमान वितरण जिसमें एक या दो राज्यों के पास अकूत ताकत इकट्ठी हो जाती है और वे ही विश्व में स्थिरता सुनिश्चित करते हैं।) जेम्स रोजैनाओ जैसे व्यवहारवादियों की आम शिकायत थी कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के तीसरी दुनिया के छात्र सहज ही परनिर्भरता सिद्धांत की और आकर्षित हो जाते हैं। यह

सिद्धात मानता है कि तीसरी दुनिया के देश ऐतिहासिक रूप से पश्चिम के विकसित देशों द्वारा शोषित होते रहे हैं।

1.6.2 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का व्यवहारवादी/वैज्ञानिक दृष्टिकोण

पश्चिमी विद्वान व्यवहारवादी दृष्टिकोण को अक्सर वैज्ञानिक दृष्टिकोण के रूप में देखते रहे हैं क्योंकि यह दृष्टिकोण मात्रिक आकलनों पर आधारित है।

उन्होंने हमें संघर्ष की जटिल प्रकृति के बारे में और अधिक सजग बनाया है तथा नीति निर्माण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि मुहैया करायी है। व्यवहारवादी विद्वानों का अंतिम लक्ष्य अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का एक सामान्य सिद्धांत विकसित करना है। पारंपरिक दृष्टिकोण मूल रूप से राजनीति विज्ञान से संबद्ध था, साथ ही वह विधि इतिहास और दर्शन का जमकर इस्तेमाल करता था। व्यवहारवादी दृष्टिकोण की वजह से अंतर्राष्ट्रीय संबंध की एक धारा कम से कम विकसित हो रही है जो अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन में व्यावहारिक अध्ययन को तवज्जो देती है।

ऐसे अनेक सिद्धांत हैं जिन्हें एक साथ वैज्ञानिक/व्यवहारवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत रखा जा सकता है। इनमें से कुछ सिद्धांत जैसे पद्धति सिद्धांत दूसरे अन्य सिद्धांतों जैसे मोल तोल एवं खेल सिद्धांत की तुलना में ज्यादा व्यापक है। इस खंड में हम केवल दो मुख्य वैज्ञानिक/व्यवहारवादी सिद्धांतों–व्यवस्था या पद्धति सिद्धांत और खेल सिद्धांत की चर्चा करेंगे।

1.6.3 व्यवस्था सिद्धांत

व्यवस्था विभिन्न तत्वों का एक समुच्चय है जिसमें सभी तत्व एक दूसरे से संबंध रखते हैं। व्यवस्था की दूसरी विशेषता यह है कि इसकी एक सीमारेखा होती है जो इसे पर्यावरण से अलग करती है, यद्यपि पर्यावरण व्यवस्था के कार्यकलाप को प्रभावित करता रहता है। आम तौर पर, व्यवस्था प्राकृतिक (जैसे सौर–प्रणाली) हो सकती है, तकनीकि (कार, घड़ी या कम्पयूटर) या सामाजिक (अर्थात परिवार) सामाजिक व्यवस्था स्वयं ही समाज या अर्थ–व्यवस्था या राजनीति या अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था से जुड़ी हुई हो सकती है।

अंतर्राष्ट्रीय पद्धति व पद्धतियों की आम धारणा ही बहुत से विद्वानों के लिए आधार का काम करती रही है। कार्ल डब्ल्यू ड्यूश्य तथा रेमण्ड एरोन इसके सबसे अच्छे उदाहरण हैं। एरोन का कहना था कि कभी भी कोई अंतर्राष्ट्रीय पद्धति नहीं रही पूरी पृथ्वी के लिए भी नहीं। किंतु युद्धोत्तर काल में पहली दफा मानवता एकल इतिहास के साथ जी रही है तथा एक खास तरह की विश्व व्यवस्था प्रकट हुई है। यह व्यवस्था सामान्य असमरूप है लेकिन इतना भी नहीं कि विद्वान उन्हें एक विषय के अंतर्गत समेट न सकें। सच तो यह है कि स्टैनले हॉफमैन द्वारा दी गई विषय की आरंभिक परिभाषा ही काफी है। हॉफमैन के अनुसार, एक अंतर्राष्ट्रीय पद्धति विश्व राजनीति की बुनियादी इकाइयों के बीच संबंधों का ढर्रा है। इसकी पहचान इकाइयों द्वारा अनुसरित उद्देश्यों के क्षेत्र तथा इन इकाइयों के आपसी कार्य व्यापार तथा उन उद्देश्यों व उन कार्यों को संपादित करने के प्रयुक्त साधनों के रूप में की जा सकती है (अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में पद्धति व प्रक्रिया, 1957)।

अन्यों की तुलना में प्रो. मोर्टन काप्लान अंतर्राष्ट्रीय संबंध के क्षेत्र में प्रणाली सिद्धांतकार के रूप में सबसे ज्यादा प्रभावी माने जाते हैं। उन्होंने विश्व राजनीतिक संगठन के कई वास्तविक एवं कल्पित नमूने दिए हैं। उनके सुपरिचित छह नमूने थे:

i) सत्ता संतुलन प्रणाली

ii) शिथिल द्विध्रुवीय प्रणाली

iii) दृढ़ द्विध्रुवीय प्रणाली

iv) सार्वभौम नियोक्ता प्रणाली

v) श्रृंखलाबद्ध प्रणाली

vi) एकल वीटो प्रणाली

प्रथम दो वास्तविक ऐतिहासिक यथार्थ हैं जबकि शेष चार कल्पित नमूने हैं। हालांकि काप्लान ने नहीं कहा था कि उनकी ये छह प्रणालियाँ उपर्युक्त क्रम में ही प्रकट होंगी फिर भी उन्होंने आशा

की थी कि चूंकि महाशक्तियाँ काफी शक्तिशाली हैं, अतः गुटनिरपेक्ष देश धीरे–धीरे अपनी हैसियत खोकर इस या उस सत्ता केन्द्र के साथ निबद्ध हो जायेंगे और इस वजह से एक दृढ़ द्विध्रुवीय विश्व का निर्माण होगा। 1991 में सोवियत संघ के पतन के बाद यह द्विध्रुवीय प्रणाली समाप्त हो गई है। यह सही है कि संयुक्त राज्य अमेरिका अन्य राज्यों की तुलना में और अधिक ताकतवर हुआ है, किंतु साथ ही यह भी सच है कि जर्मनी और जापान जैसे अन्य देश भी आर्थिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आए हैं। इस तरह दुनिया को एकल ध्रुवीय या बहुध्रुवीय प्रणाली के रूप वर्गीकृत करना हमारे विश्लेषण की पद्धति पर निर्भर करता है। वर्तमान विश्व परिदृश्य काप्लान द्वारा सुझाए गए छह माडलों में से किसी भी एक के साथ पूरी तरह मेल नहीं खाता। इन मॉडलों का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

i) सत्ता संतुलन प्रणाली : यह प्रणाली यूरोप में 18वीं और 19वीं सदी में मौजूद थी। इस प्रणाली के तहत कुछ शक्तिशाली देश अकेले या दूसरे के साथ गठबंधन कर सत्ता संतुलन कायम करने की कोशिश करते हैं। आमतौर पर एक देश संतुलनकर्ता होता है। संतुलनकारी राज्य एक ऐसा राज्य है जो हर उस राज्य की सहायता करता है जो कमजोर होने की इच्छा केवल इसलिए रखता है कि कहीं सत्ता संतुलन गड़बड़ा न जाए।

ii) शिथिल द्विध्रुवीय प्रणाली : शीत युद्ध के दौरान यह स्थिति मौजूद थी। विश्व सत्ता के नक्शे में द्विध्रुवीय विभाजन के बावजूद कुछ देशों ने किसी भी एक सत्ता केंद्र के साथ गठबंधन बनाना अस्वीकार कर दिया था। स्तरीकृत विश्व प्रणाली के अंतर्गत ये देश शिथिल रूप से लटके हुए हैं।

उदाहरण–गुटनिरपेक्ष देश, अंतर्राष्ट्रीय कर्ता के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ।

iii) दृढ़ द्विध्रुवीय प्रणाली : कल्पना करें कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी भूमिका करने वाले देश जैसे गुटनिरपेक्ष देश किसी एक सत्ता केंन्द्र के साथ गठबंधन करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में जो प्रणाली बनेगी वह दृढ़ ध्रुवीय प्रणाली कहलायेगी।

iv) सार्वभौम नियोक्ता प्रणाली : इस प्रणाली के अंतर्गत कोई अंतर्राष्ट्रीय संगठन जिसे सभी देशों की निष्ठा हासिल होती है, सत्ता का केन्द्र बन जाता है। देश चाहे छोटे हों या बड़े, सभी देश सर्वाभौम नियोक्ता जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। इस तरह बिना अपनी संप्रभुता का लोप किए हुए राष्ट्र राज्य संयुक्त राष्ट्र को मजबूत बना सकेंगे तथा आम तौर पर उसके निर्णयों का अनुपालन कर सकेंगे। अंततः इससे विश्व सरकार का रास्ता प्रशस्त होगा।

v) श्रृंखलाबद्ध अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली : इस प्रणाली के अंतर्गत एक देश इतना ज्यादा शक्तिशाली हो जायेगा कि दूसरे देश उसके निर्देशों के अनुसार संचालित होने लगेंगे। इस प्रणाली को एकल ध्रुवीय विश्व प्रणाली कह सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र तब भी मौजूद रह सकता है किंतु गुट निरपेक्ष देश नहीं रहेंगे, न ही संयुक्त राष्ट्र के पास पर्याप्त ताकत होगी।

vi) एकल वीटो प्रणाली : अंतर्राष्ट्रीय संबंध के संदर्भ में मॉर्टन काप्लान द्वारा प्रतिपादित एकल वीटो प्रणाली हॉब्स द्वारा प्रतिपादित "प्राकृतिक अवस्था" से मिलती जुलती है। प्रत्येक राज्य दूसरे राज्य का दुश्मन होगा क्योंकि तकरीबन सभी देशों के पास परमाणु हथियार होंगे। इस तरह सभी अंतर्राष्ट्रीय सूत्रधार अपने अपने दुश्मन के खिलाफ परमाणु हथियार इस्तेमाल करने में समर्थ होंगे।

बाद में खुद काप्लान ने अपने छह मॉडलों की सूची में कुछ अन्य मॉडल भी जोड़े थे। इसी बीच, दूसरे विद्वानों ने कुछ अन्य मॉडल भी सुझाए हैं। इस तरह कलम्बीस और वोल्फे काप्लान के छह मॉडलों को स्वीकार करते हुए तीन अन्य मॉडल जोड़ते हैं। ये हैं :

क) बहुकेन्द्रक (अथवा अंतर्राष्ट्रीय मॉडल)

ख) राष्ट्रीय – विखंडन (अथवा बहुध्रुवीय) मॉडल तथा

ग) उत्तर परमाणु युद्ध मॉडल

बहुकेन्द्रक मॉडल में दुनिया 5 से 7 विशिष्ट प्रभाव क्षेत्रों में बँटी हुई मानी गई है। इनमें से प्रत्येक क्षेत्र एक–एक महाशक्ति के नियंत्रण में होगा। नतीजतन दुनिया बहुध्रुवीय बन जाएगी।

राष्ट्रीय विखंडन मॉडल : यह राजनीतिक और भूखंडीय टूटन का नतीजा होगा। जातीय, कबीलाई और रंगभेदी अलगाववादी आंदोलन की वजह से बड़े राज्य टूटकर छोटे–छोटे राज्यों में बदल सकते हैं। जैसे कि पूर्व सोवियत संघ, यूगोस्लोविया और चेकोस्लोवाकिया। आज ये टूटकर अनेक संप्रभु राज्यों में परिणत हो गए हैं।

उत्तर परमाणु युद्ध मॉडल : यह प्रलयकारी परमाणु युद्ध के बाद की दुनिया होगी। अगर इस तरह का कोई युद्ध होता है तो उसके बड़े सख्त नतीजे सामने आएंगे। ऐसी स्थिति में जो राज्य सबसे ज्यादा निरंकुश होगा वही रोटी, मकान व दवा–दारू का सही वितरण कायम रख सकेगा। ऐसी खतरनाक स्थिति से निजात पाने के लिए एक नई विश्व प्रणाली की स्थापना करनी होगी।

1.6.4 खेल सिद्धांत

खेल सिद्धांत विश्व राजनीति के अध्ययन के लिए एक मॉडल प्रदान करने की कोशिश करता है, खासकर एक अत्यंत प्रतियोगी माहौल में जहाँ कि फैसला लेना मुश्किल हो। ऐसा इसलिए क्योंकि विभिन्न अभिनेताओं के बारे में अनुमान लगाना संभव नहीं है। इस अनिश्चयपूर्ण माहौल में संभावनाओं के आंकलन का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए कुछ विद्वानों ने खेल सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। यह सिद्धांत एक झटके में थ्योरी ऑफ गेम्स एंड इकोनामिक बिहेवीयर (प्रिंसटन, 1994) नामक पुस्तक के प्रकाशन के पास प्रकट हुआ था। इसके लेखक जॉन वॉन न्यूमैन एक गणितज्ञ और ओश्कार मौर्गेन्स्टर्न, एक अर्थशास्त्री थे। उनके अनुयायियों में खास थे कार्ल ड्युश्च और मार्टिन शुबीक। हालांकि, हाल के वर्षों में सबसे पहले इसे अर्थशास्त्रियों ने ही अपनाया है, फिर भी संशोधनों के साथ इसका इस्तेमाल अन्य क्षेत्रों में भी हुआ है।

अपने सरलतम रूप में खेल सिद्धांत शून्य प्राप्तांक खेल का एक मॉडल है। यह द्वंद्व प्रतियोगिता की ऐसी स्थिति का द्योतक है जहाँ एक पक्ष की कुल हानि पूरी तरह की विरोधी पक्ष के लाभ के बराबर होती है। यही इस खेल का रहस्य है–लाभ व हानि का योग शून्य है।

अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन के लिहाज से खेल सिद्धांत का मॉडल एक बहुदलीय शून्योतर प्राप्तांक खेल है। ऐसा इसलिए क्योकि, जैसा कि जे. के. जवेदनी हमें याद दिलाते हैं, "हमें याद रखना होगा कि आज कुछ संघर्ष ऐसे भी हैं जिन्हें इस तरह सुलझाया जा सकता है कि दोनों पक्षों में से कोई भी न हारे या कोई भी न जीते।"

जैसा कि आप पहले ही जान चूके हैं, अलग–अलग पड़े हुए पूर्णतः स्वतंत्र देश इससे प्रभावित नहीं होते कि दूसरे देश क्या कर रहे हैं। फिर भी वे एक दूसरे से प्रभावित होते हैं और पारस्परिक निर्भरता के आधार पर पारस्परिक लाभ के लिए सहयोग भी करते हैं। पारस्परिक निर्भरता की ऐसी स्थिति में राज्य इस तरह खेल खेलते हैं कि उन्हें अधिकतम लाभ प्राप्त हो।

इस संदर्भ में जिन दो सबसे महत्वपूर्ण खेलों के नाम सुझाए गए हैं वे हैं–मुर्गा खेल और कैदी की दुविधा खेल। मुर्गा खेल की स्थिति में दो कार चालक सड़क के मध्य एक दूसरे की विपरीत दिशा में जा रहे होते हैं। उनमें से अगर एक किनारे पर रूककर दूसरे को आगे जाने के लिए रास्ता देता है, तो गंभीर दुर्घटना की संभावना बनती है जिसमें एक या दोनों ही चालकों की मौत हो सकती है। दूसरी ओर, जो भी दूसरे को जाने का रास्ता देता है, उसकी प्रतिष्ठा पर आँच आती है किन्तु दुर्घटना टल जाती है। राष्ट्रों को भी अक्सर ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ता है। आम तौर पर, कोई भी अपनी प्रतिष्ठा खोना नहीं चाहता। मुर्गा खेल की खास बात यह है कि दोनों पक्ष एक दूसरे की मंशा से वाकिफ रहते हैं, इसके बावजूद किसी देश की विदेश नीति के निर्माताओं के सामने केवल अपने हित की रक्षा का विकल्प खुला रहता है। इस क्रम में अगर दूसरे देश को भी फायदा पहुँच जाता है तो इसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। जो देश अपनी ईज्जत से चिपका रहता है उसे भारी क्षति उठानी पड़ती है।

कैदी दुविधा खेल में स्थिति दूसरी होती है। कैदी की तरह एक राष्ट्र को भी दुविधा की स्थिति झेलनी पड़ती है जबकि उसे यह पता नहीं होता कि उसके दुश्मन की मंशा क्या है। इस मॉडल में हत्या के आरोप में गिरफ्तार दो कैदियों को अलग–अलग कमरों में रख दिया जाता है जहाँ न वे एक दूसरे को देख सकते हैं न ही आपस में कोई बात कर सकते हैं। खेल अधीक्षक उन दोनों से अलग–अलग कहता है कि तुम में से जो हत्या का जुर्म कबूल कर लेगा, उसे न केवल बरी कर दिया जायेगा बल्कि जो कबूल नहीं करेगा उसे फांसी भी दे दी जाएगी। अगर दोनों में कोई भी अपना जुर्म कबूल नहीं करता तब दोनों को ही छोड़ दिया जायेगा किन्तु उन्हें कोई ईनाम नहीं

दिया जाएगा। लेकिन अगर दोनों ही कबूल कर लेते हैं तो दोनों को ही कड़ा दंड दिया जायेगा। इस खेल का सबक यही है कि प्रत्येक व्यक्ति ईनाम या लाभ चाहता है, फिर भी खतरनाक स्थिति में फंस सकता है क्योंकि वह दूसरे की मंशा से वाकिफ नहीं रहता है।

1.6.5 समन्वय सिद्धांत

इस सिद्धांत के प्रतिपादक चार्ल्स केगली एवं विटकाफ है। 1993 में प्रकाशित अपने एक लेख में उन्होंने मानवीय प्रकृति की यथार्थवादी धारणा को अस्वीकार किया। उनका मानना है कि मनुष्यों की मनोवृति अलग अलग होती है और यह कि मानवीय कार्यकलाप व्यक्ति के ऐच्छिक निर्णयों का प्रतिफल होता है, किंतु यह ऐच्छिक निर्णय खुद पर्यावरण से प्रभावित होते रहते हैं। उदारवादी नहीं मानते कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध अराजक हैं। उनके मत में अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली आज देशांतरी अंतः क्रियाओं पर आधारित हो चुकी है और इसी के फलस्वरूप उनके बीच सहयोग के क्षेत्र बने हैं। बढ़ती सांस्कृतिक समरूपता तथा आर्थिक एवं सामाजिक निर्भरता विभिन्न समाजों एवं सरकारों को एक ही धागे में गूंथती जा रही है। अनेक अंतर्राष्ट्रीय एजेंसिया व प्रणालियाँ, जैसे विश्व व्यापार संगठन, देशों के बीच समन्वय को प्रोत्साहन दे रही है। क्षेत्रीय व विश्वस्तर पर देशों के बीच पारम्परिक निर्भरता बढ़ाने के काम में उदारवादी गैर–राज्यीय ताकतों, जैसे गैर सरकारी संगठन, क्षेत्रीय संगठन आदि की भूमिका पर विशेष बल देते हैं।

उदारवादी स्वीकार नहीं करते कि दुनिया एकलध्रुवीय हो गई है। उनके अनुसार शीतयुद्धोत्तर काल में दुनिया बहुध्रुवीयता की ओर बढ़ रही है। इसके साथ ही देशों के बीच मौजूद अविश्वास एवं तनाव को कम करने के लिए अंतरराज्यीय सहयोग भी बढ़ता जा रहा है। विश्व के देशों की पारस्परिक निर्भरता ही वह कारण है जिसके चलते सभी सरकारें परमाण्विक हथियारों की बढ़त आर्थिक मंदी, ओजोन छीलन, जलवायु में परिवर्तन तथा एड्स के मुद्दों के प्रति बराबर ढंग से सजग हो सकी है। आम सरोकार के ये मुद्दे देशों के बीच मौजूद पारस्परिक निर्भरता का इज़हार करते हैं। विद्वानों को चाहिए कि वे समन्वयन के संदर्भ में इन समस्याओं की जाँच पड़ताल करें। इसीलिए उदारवादी इन समस्याओं व दूसरे संगठनों के अध्ययन पर जोर देते हैं। उनका विश्वास है कि संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था के विस्तार से देशों की पारस्परिक निर्भरता में बढ़त होगी। कुल मिलाकर, उदारवादियों की पारस्परिक निर्भरता का सिद्धांत शीतयुद्धोत्तर काल की बहुध्रुवीयता, संयुक्त राष्ट्र तथा दूसरे गैर सरकारी व क्षेत्रीय संगठनों की बढ़ती भूमिका तथा फलस्वरूप पश्चिमी औद्योगिक देशों के प्रभाव से पैदा हुए समन्वयन से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है।

1.6.6 परनिर्भरता दृष्टिकोण

जहाँ यथार्थवादी प्रभुत्वकारी संतुलन की बात करते हैं तथा उदारवादी पारस्परिक निर्भरता, वहीं तीसरी दुनिया के विद्वान सदैव विचार व्यक्त करते रहे हैं कि सामयिक अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का आधार वास्तव में तीसरी दुनिया के अल्प विकास से जुड़ा हुआ है। हालांकि यह कोई श्रेष्ठ औपचारिक सिद्धांत नहीं है। फिर भी परनिर्भरता दृष्टिकोण उस शक्तिशाली मिथक को चुनौती देने में कामयाब रहा है जो विश्वास करता था कि तीसरी दुनिया के अविकास की बीमारियों का एक ही इलाज है, वह पश्चिम द्वारा सुझाए गए आधुनिक एवं यथार्थवादी नुस्खे पर अमल करे। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि यह दृष्टिकोण लैटिन अमरीकी देशों में पैदा हुआ था। अंतर्राष्ट्रीय संबंध के क्षेत्र में परनिर्भरता सिद्धांत के अनुयायिओं का कहना है कि :

i) परिधि देशों में परनिर्भरता की मौजूदा स्थिति विकसित देशों द्वारा उनके अतीत में किए गए शोषण का नतीजा है। ये शोषक देश ही आज केन्द्रक में स्थित है।

ii) इसीलिए राष्ट्रों के बीच संबंध असमरूप हैं, और

iii) ऐसी असमरूपता अंतरराज्यीय संबंधों तक ही सीमित नहीं है। क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय संबंध/कारोबार में कई कई समूहों/वर्गों के बीच संबंध स्थापित होते हैं। ऐसे संबंध देशों के अंदर, बाहर या उनके बीच कहीं भी बन सकते हैं। इस दृष्टिकोण की तर्क प्रणाली ने परनिर्भरता की संरचना–भूतकालिक एवं वर्तमानकालिक दोनों — के उन कारकों अथवा शक्तियों के विश्लेषण पर जोर दिया जिन्हें न यथार्थवादी, न नवयथार्थवादी, यहाँ तक कि उदारवादी भी, कोई महत्व नहीं देते थे। मुख्यतः मार्क्सवाद से प्रभावित यह दृष्टिकोण अंतरराज्यीय राजनीति के विकास को प्रभावित करने वाली विश्व शक्तियों व प्रवृत्तियों का फल मानता है। यह विकास अतीत और वर्तमान दोनों ही स्थितियों में असमान रहा है।

प्रो. एफ. एच. कार्डोंसो (जो कि वर्तमान में ब्राजील के राष्ट्रपति हैं) रॉल प्रबिश्च, तथा उनके सहयोगी आंद्रे गुंदर फ्रैंक इस दृष्टिकोण के प्रमुख प्रणेताओं में से हैं। आज यह दृष्टिकोण व्यापक रूप से स्वीकृत है। पश्चिमी विद्वान भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं।

1.6.7 महिलावादी दृष्टिकोण

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह एक हाल ही का किंतु प्रभावी दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण मानता है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध स्पर्द्धी, सत्ताकेंद्रित व शोषणकारी है तो इसीलिए है कि राजनीति में पुरूषों का प्रभुत्व बरकरार है। मतलब यह है कि अगर विविध तरीकों से महिलाओं को राजनीति में उचित भागीदारी दे दी जाये तो अंतर्राष्ट्रीय संबंध और अधिक संतुलित व प्रभावी हो जायेंगे। उदार महिलावादियों का विश्वास है कि शिक्षा, राजनीतिक लामबंदी तथा परिवर्तनकारी दबाव के जरिये अपेक्षित लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। दूसरी तरफ उग्र महिलावादी है जो सोचती है कि पूंजीवाद ही लिंग असमानता का प्रमुख कारण है, इसीलिए अगर समाजवाद को अपना लिया जाये तो लैंगिक समानता बहाल करने की प्रक्रिया तो तेज होगी ही, साथ ही इससे विश्व में शांति भी सुनिश्चित की जा सकेगी। यह कहा जाता है कि पश्चिमी दर्शन की वजह से पुरूषों में लैंगिक पूर्वाग्रह पैदा हुआ है। इससे भी छुटकारा पाने की जरूरत है। इस तरह महिलावादी सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की तमाम समस्याओं को लिंग असमानता व पुरूष वर्चस्व के साथ जोड़कर देखने का आग्रह करता है। लेकिन आलोचकों का कहना है लिंग विभेद प्राकृतिक और जीव विज्ञान जन्य है और इसी लिए इन महिलावादी सिद्धांतकारों को पुरूषों को संबोधित करने के बजाय उस समाज को संबोधित करना चाहिए जिसमें हम जन्म लेते हैं, बड़े होते हैं और अपने कार्य व्यापार का संपादन करते हैं। महिलावादी दृष्टिकोण से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण विचारकों में सिन्थिया एन्लो तथा स्पाईक पीटरसन के नाम खास हैं।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

1) यथार्थवादी व आदर्शवादी सिद्धांतों का संक्षिप्त वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

2) नवयथार्थवाद क्या है ?

.....

.....

.....

.....

.....

3) काप्लान के द्वारा दिए गए प्रणाली सिद्धांत के छह मॉडलों की संक्षिप्त व्याख्या करें।

.....

.....

.....

.....

4) उदारवादी/पारस्परिक निर्भरता सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?

.....

.....

.....

.....

1.7 सारांश

इस इकाई में हमने पाठकों का अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से परिचय कराया है। 1991 में वेल्स विश्वविद्यालय में प्रथम अंतर्राष्ट्रीय पीठ की स्थापना के साथ ही यह विषय विकसित होने लगा। अपने आप में यह एक दिलचस्प कहानी है कि राजनयिक इतिहास से जन्मा यह विषय कैसे आज एक वैज्ञानिक विषय बन गया है। एक स्थिति के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संबंध संप्रभु देशों के बीच अधिकारिक संबंधों का सूचक है। किंतु एक विषय के रूप में यह इन अंतरराज्यीय संबंधों के व्यवस्थित ज्ञान का सूचक है। अध्ययन की एक शाखा के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संबंध उस प्रक्रिया की जाँच पड़ताल करता है जिसके जरिये एक राज्य अपने राष्ट्रीय हित को दूसरे राज्यों के हितों के साथ समायोजित करता है।

अंतर्राष्ट्रीय संबंध और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के बीच फर्क न केवल वांछित है, बल्कि जरूरी भी है। जहाँ अंतर्राष्ट्रीय राजनीति भिन्न देशों के बीच मौजूद अधिकारिक एवं राजनयिक संबंधों का ही विश्लेषण करती है, वहीं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की परिधि काफी फैली हुई है। क्योंकि इसमें राजनीतिक आर्थिक, भौगोलिक, कानूनी और सांस्कृतिक संबंधों की जाँच पड़ताल भी शामिल है। एक तरह से अंतर्राष्ट्रीय राजनीति अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का ही एक अंश है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद प्रौद्योगिकी व संचार के क्षेत्र में होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तनों की वजह से अंतर्राष्ट्रीय संबंध की परिधि और अंतर्वस्तु में काफी तब्दीलियाँ आई हैं। गुप्त राजनय ने अंतर्राष्ट्रीय संबंध की रूपरेखा बदल दी है। इसका क्षेत्र बढ़ा है, अब इसके अंतर्गत केवल अधिकारिक राजनीतिक संबंधों की चर्चा ही नहीं होती, बल्कि, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और आर्थिक क्षेत्रों की गतिविधियों की भी चर्चा होती है। अब इसकी परिधि में संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन जैसे सार्वभौम नियोक्ताओं तथा बहुराष्ट्रीय निगमों, गैर सरकारी संगठनों जैसे गैर–राज्यीय तत्वों की भूमिकाएं भी शामिल हो गई हैं।

अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन में विद्वानों ने समय–समय पर तरह–तरह के दृष्टिकोणों का सहारा लिया है। पारस्परिक दृष्टिकोण विधि, इतिहास और राज़नीति विज्ञान पर पूरी तरह निर्भर था। यथार्थवाद व आदर्शवाद पारंपरिक दृष्टिकोण के दो रूप हैं। यथार्थवाद, राष्ट्रीय हित व शक्ति पर विशेष जोर देता है और मानता है कि तमाम अंतर्राष्ट्रीय संबंध वास्तव में सत्ता संघर्ष ही है। आदर्शवाद के लिए शक्ति एक अस्थायी चीज है। वह मानता है कि शिक्षा, विज्ञान और विवेक के सहारे विश्व शांति स्थापित करना संभव है। व्यवहारवादी दृष्टिकोण जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद प्रसिद्ध हुआ, अपनी प्रकृति में अंतरविधात्मक है। प्रणाली व खेल सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन के नए व्यवहारवादी मॉडल हैं। इस इकाई में हमने प्रणाली सिद्धांत और खेल सिद्धांत के संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किए हैं। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के अन्य दृष्टिकोणों जैसे परनिर्भरता व महिलावादी दृष्टिकोणों के संक्षिप्त वर्णन के साथ यह इकाई समाप्त होती है।

1.8 शब्दावली

विषय : क्रमबद्ध रूप से विकसित ज्ञान की एक शाखा।

स्थिति : प्रत्यक्ष व्यवहार से संबंधित

प्राचीनतम (शास्त्रीय) : घटनाओं की वास्तविक स्थिति।

व्यवहार	:	दीर्घकालिक व इतिहास सम्मत।
खेल	:	प्रतियोगिता की एक स्थिति जिसमें फलाफल तो अनिश्चित रहता है किन्तु संभावित व्यवहार के लाभ के लिहाज से विवेकसम्मत आंकलन किया जा सकता है।
आदर्शवादी	:	वह व्यक्ति जो अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संचालन में आदर्शोन्मुख लक्ष्यों व नैतिक मूल्यों के इस्तेमाल का आग्रह करता है।
वैज्ञानिक	:	वस्तुनिष्ठ व पर्यवेक्षणीय प्रणाली पर आधारित।
प्रणाली	:	एक दूसरे के साथ प्रकार्यात्मक अंतः क्रिया में शामिल तत्वों का एक समुच्चय। यह समुच्चय एक पर्यावरण में अवस्थित होता है जिसके कई भाग होते हैं। ये भाग एक दूसरे के साथ अंतः क्रिया के जरिये जुड़े होते हैं।

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

मार्गेन्थु हान्स, **पोलिटिक्स अमंग नेशन्स, स्ट्रगल फॉर पावर एण्ड पीस**

नो, के. तथा रोजेनाऊ जे. एन., **कन्टेंडिंग एप्रोचेज टु इंटरनेशनल पोलिटिक्स**

क्लौद, ईनिस, **पावर एण्ड इंटरनेशनल रिलेसन्स**

मैक्लेलैड चार्ल्स ए., **थ्योरी एंड द इंटरनेशनल सिस्टम**

काप्लान, मॉर्टन, **सिस्टम एंड प्रोसेस इन इंटरनेशनल पॉलिटिक्स**

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) एक स्थिति के रूप में संप्रभु राज्यों के बीच वास्तविक अधिकारिक संबंध उनके विवाद व द्वंद्व और उनके बीच सहयोग। एक विषय के रूप में यह अंतरराज्यीय संबंधों का क्रमबद्ध अध्ययन है और यह जरूरी नहीं है कि ये संबंध सदैव राज्यों के बीच के ही हों।

2) अंतरराज्यीय संबंधों का अध्ययन/यों तो राजनीतिक संबंध ही मुख्य रूप से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का निर्माण करते हैं, किंतु इसके अंतर्गत आर्थिक, व्यापारिक व व्यावसायिक संबंधों यहां तक उन अंतरराज्यीय मुद्दों जो औद्योगिक, सांस्कृतिक व धार्मिक संगठनों से संबंधित होते हैं, का अध्ययन भी शामिल हैं।

3) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का क्षेत्र ज्यादा व्यापक है, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति बदलते सत्ता समीकरणों के संदर्भ में राज्य की नीतियों के बीच की अंतः क्रिया का अध्ययन करती है। यह राज्यों के बीच की अंतः क्रिया का अध्ययन करती है। यह राज्यों के संबंधों को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करती है।

4) यह अब यूरोपीय राज्यों तक ही सीमित नहीं रह गया है, उपनिवेशों के खात्में के साथ यह वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय बन गया है, यात्रा संचार तथा हथियारों व युद्ध की प्रकृति होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तनों ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति भी बदल दी है।

बोध प्रश्न 2

1) हम एक ऐसी विश्व व्यवस्था में जी रहे हैं जहां दूरिया कम हो गई हैं तथा राज्यों के बीच के संपर्क, संघर्ष व सहयोग हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। ऐसे में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन करना बहुत उपयोगी है।

2) यह अंतरराज्यीय आर्थिक व राजनीतिक संबंधों का अध्ययन करता है। संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन तथा अनेक बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिकाओं का अध्ययन भी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की परिधि में शामिल है।

बोध प्रश्न 3

1) यथार्थवाद अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन में शक्ति की प्रभुत्वकारी भूमिका को स्वीकार करता है। राष्ट्रीय हित सर्वोपरि है और प्रत्येक राष्ट्र शक्ति से इसकी रक्षा करना है। राजनीति सत्ता के लिए संघर्ष है। आदर्शवाद नैतिक मूल्यों के इस्तेमाल पर जोर देता है, शक्ति को क्षणस्थायी घटना मानता है तथा शिक्षा, विवेक आदि के जरिये विश्व शांति कायम करना चाहता है।

2) नवयथार्थवाद जो संरचनात्मक यथार्थवाद के नाम से भी जाना जाता है, मानता है कि अंतर्राष्ट्रीय अराजकता ही अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की मूल पहचान है। यह अराजकता इसलिए पैदा हुई है क्योंकि गैर राज्यीय सूत्रधारों की भूमिका मुख्य हो गई। उदाहरण—अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद धर्म तथा प्रतियोगी बहुराष्ट्रीय निगम, बहुद्देशीय कंपनियां, गैर सरकारी संगठन, बहुपक्षीय एजेंसिया जैसे विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन और सबसे बढ़कर संयुक्त राष्ट्र।

3) अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली के बारे में काप्लान द्वारा किए गए वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तावित करता है: सतत् प्रणाली का संतुलन, शिथिल द्विध्रुवीय प्रणाली, दृढ द्विध्रुवीय प्रणाली, सार्वभौम नियोक्ता प्रणाली, श्रेणीबद्ध प्रणाली तथा एकल वीटो प्रणाली।

4) यह इस विचार को नकारता है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध अराजक है। उनके अनुसार, विश्व प्रणाली अंतरराष्ट्रीय लेनदेन पर आधारित है जिससे पारस्परिक निर्भरता बढ़ती है। यह दृष्टिकोण राष्ट्रों की पारस्परिक निर्भरता तथा तत्जनित विश्व के समन्वयन में विश्वास करता है।